संस्कृति, पर्यावरण एवं प्रकृति संरक्षण

भारत कभी विष्व गुरू था, ये युक्ति हमें पढ़ने सुनने को मिल जाती है अगर इस वाक्य को लेकर हम चिन्तन करें तो हमारे सामने ऐसे अनेकों उदाहरण प्रमाण के रूप में मिलने लगेंगे जो स्पष्ट करते होंगे कि भारतीय संस्कृति में वो क्षमतायें थीं जिनके द्वारा विष्व पर हमारा एकाग्र प्रभाव रहा होगा और आज भी हम ऐसी क्षमतायें रखते हैं, पर आज हम अपनी मौलिकता खो रहे हैं हमारा अपने ही संस्कारों से विष्वास उठता जा रहा है। आधुनिक बनने की दौड की, होड़ में हम ऐसा कर रहे हैं या फिर शक्तिषाली देषों के ये मन्सूबे हो सकते हैं कि वह अपने नियंत्रण में रहने वाले देषों के माध्यम से हमें हानि पहुंचा रहे हैं क्योंकि घरेलु वैमनस्यता के कारण वह हमसे कट कर अलग हुए हैं।

आक्रमणकारी नीतियों के किसी विद्वान ने स्पष्ट कहा था कि **किसी भी देष को नष्ट करना है तो उसकी संस्कृति नष्ट कर दो हमें उससे युद्व करने की आवष्यकता ही नहीं पड़ेगी।**

अनेकों देष स्वतंत्र होते हुए भी मानसिक रूप से परतंत्रता में ही जी रहे हैं कारण उन्होंने अपनी पहचान खो दी है। विकासषील बनने के लिए जिन माध्यमों की जरूरत होती है वही माध्यम गुलामी में जीने को मजबूर कर देते हैं। हम भी ऐसी घटनाओं से अछूते नही हैं हमने आक्रमण झेले ठगी डकेती, छल, कपट सभी में जीना सीखा बर्षों तक गुलामी का मुखौटा लगाकर हम भटकते रहे। विद्रोह और विरोध करने का साहस हमारे ही घर के भाई छीन लेते थे। घटनाऐं कुछ भी हो भुगता तो हमने ही है विद्या की देवी मॉ सरस्वती की रजत प्रतिमा भारत से लंदन पहुंची, हम सिर्फ आजतक वापस लाने की चर्चा करते रहते हैं विष्व का एक मात्र कोहिनूर जो हमसे छीना गया और परदेष की शोभा बढाये हुए है। हम उसे अपनी उपलब्धी समझते हैं और अपने को सौभाग्यषाली समझते हैं। और गर्व महसूस करते हैं विदेषी षिकंजे में रखा कोहिनूर हमारे भारत देष का है।

सोने की चिड़िया या सोने की चिरैया कहा जाने वाला भारत आज के वगुला भगतों या कार्य हेतु चुने जा रहे पॉच दसकों के नुमाइन्दों के कर्मो से नही है। श्रम के सीकर के पारिश्रमिक से बूंद–बूंद भरे घड़े से क्रय किया जाने वाला स्वर्ण जिस तरह अनमोल होता है उसी तरह भारत–संस्कार, सभ्यता, बलिदानों, साहस, साहित्य एवं कला के उपादेयों से उत्पन्न फल से सोने की चिड़िया को जन्म देता है। भौतिक रूप में कहे तो भारत में रहने वाले निम्न से निम्न, निर्धन से निर्धन परिवार में भी कम से कम एक जंगल सूत्र तो स्वर्ण आभूषण के रूप में रहता ही है। दिपावली पूजा पर स्वर्ण मुद्रा का चलन भारत में ही था सोने की थाली में प्रसाद लगाने की परम्परा यहीं है यहा के मन्दिरों के दरवाजे स्वर्ण जड़ित होते थे। पारस पत्थर की ऊपज भारत में ही रही है इसी बजह से भारत को सूने की चिड़िया कहलाता था। ये अलग बात है कि आज प्लास्टिक और स्टील ने अपनी जगह बना ली है। ऊपरी चकाचौंध हमें अच्छी लगती है पर जब चकाचौंद का प्रकाष धुंधला होता है तब हमें दिखना बंद हो जाता है। हमारे देष में हमारे बुजुर्गों को दौलत समझते थे पर विदेषी सभ्यता ने दौलत को ही सब कुछ समझने के लिए हमें प्रेरित किया है। हमारे संस्कारों में सांयकाल पेड़ों को स्पर्ष करने पर पांबदी थी। बच्चों में संस्कार दिये जाते थे कि वह पेड़ों को स्पर्ष करने पर पांबदी थी। बच्चों में संस्कार दिये जाते थे कि वह पेड़ों को दिन डूबने के उपरान्त नहीं छुये। पेड़ सो रहे हैं ऐसी मान्यताओं को आज झुठलाया जा रहा है। जिन संस्कारों से हमें सीख, सुरक्षा, सभ्यता और समृद्वि मिलती थी उन्हें रूढ़िवादी कह कर नष्ट किया जा चुका है या नष्ट करने हेतु प्रयत्न हो रहे हैं। ऐसी परिस्थियों के साथ ही हमारा दायित्व शुरू हो जाता है कि प्रबुद्व वर्ग भारतीय मूल

को बचाने हेतु क्या कर रहे हैं? या कार्य योजना का निर्माण करेंगे। विष्व कवि पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में लिखा है– क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीर।।

इन पॉच तत्वों से निर्मित मानव का शरीर क्या अपने निर्माणकर्ता तत्वों के प्रति चिन्तनषील है, क्या मनुष्य ने कभी यह सोचने की कोषिष की है कि ये पंच तत्व हमें बनाते हैं और हमें अपने में ही समेट लेते हैं। बल्कि मनुष्य इन्हे अपने अनुसार यानि प्रकृति के स्वभाविक रूप से अलग चलना चाहता है। आज हवा, जल, अग्नि, थल और आसमान सभी को आंबटित कर दिया गया है। इन तत्वों का मूल्य मनुष्य तय करने लगा है। हवा को पेषर पम्प में कैद कर रखा जाता है। गैस सिलण्डर आदि से अग्नि को बेचा जा रहा है। जल की बिक्री के विषय में तो कहना ही क्या, पानी की बोतल, गर्मियों में डिब्बों में पानी, टेंकर आदि सभी के माध्यम स`जल की बिक्री हो रही है। भूमाफिया पूरे देष में सक्रिय हैं। शेष बचा आसमान था सो चन्द्रमा पर प्लाट करने की चर्चा ये भी पूर्ति करेगी। हवाई मार्ग अपने–अपने देषों ने आरक्षित कर रखे हैं। कुल मिलाकर पंच तत्वों को बेचा जा रहा है। आने वाले दिनों में जनसंख्या का भार पृथ्वी उठा पायेगी या नही परन्तु जापान में आये सुनामी का कहर पुनरावृत्ति करने को मजबूर होते रहेंगे।

भारती परम्पराओं में प्रकृति संरक्षण के लिये पल–पल पर तीज त्यौहारों, वर्जनाओं को माध्यम बनाया गया है। प्राकृतिक दृष्टिकोण से वृक्ष को ही लें तो वृक्ष हमारी संस्कृति के अध्येयता है। तन–मन–धन तीनों को मजबूती प्रदान करने की क्षमतायें वृक्षों में होती हैं तभी हमारे रीति–रिवाजों के माध्यम से वृक्षों की पूजा उसका सम्मान रखा गया है। पीपल, बरगद, आंवला, अषोक, तुलसी, बेर, कनेर आदि पूज्य हैं। हिन्दू मान्यताओं के आधार पर पुराणों, वेदों में इनके महात्म्य को दर्षाया गया है जहॉ इन वृक्षों, जड़ी बूटियों की पूजन विधिंया तक है पूजन विधियों तक ही नहीं वृक्षों के महात्म्य की कहानी को भी पौराणिक रूप से सर्वमान्य माना गया है।

मध्य प्रदेष आदिवासी कला परिषद के माध्यम से आदरणीय डॉ. कपिल तिवारी ने भारतीय संस्कारों, रीति–रिवाज, परम्पराओं का पुस्तकीय रूप में सुरक्षित करने का जो अतुलनीय कार्य किया है वह शोधार्थियों के लिये किसी विष्वविद्यालय से कम नहीं होगा। परम पूज्य गुरू जी स्व. श्री महेष कुमार मिश्र मधुकर की पुस्तक वृक्षपुराण ग्रंथ परिषद से ही किया गया है वैसा अन्यत्र सुनने को भी नहीं मिला। पुस्तक में व्युत्पत्ति, भुवनकोष, देवतरू, वृक्षायुर्वेद, उदकार्गल, वृक्षकथा अध्यायों के माध्यम से वृक्षों को सम्मान दिया गया है व जैव विविधता की विलुप्त प्रजातियों को रखा गया है।

आज जबकी हमने जंगल मिटा ही दिये हैं, पृथ्वी के भू–गर्भ जल का दोहन कर ही लिया है, प्रदूषण फैलाने में हमें महारथ हासिल है ही तो फिर प्रकृति के बिगड़ते अनुपात पर हमें चिंता करनी ही नहीं चाहिए। क्या जल संरक्षण, वृक्षारोपण, वायुप्रदूषण पर बनाई जा रही योजनायें सार्थक प्रयास है या उनके माध्यम से धन संग्रह की हमारी स्वार्थ सिद्व करने वाली मानसिकता। योजनाओं के तहत जब–जब भी पौधों की अपेक्षा कागजों के वृक्ष लगाये जाते रहेंगे तब–तब प्रकृति मनुष्य को अपने साथ हुए खिलवाड़ का खामियाजा भुगतने को विवष करती रहेगी।

आम, आंवला, बरगद, पीपल सदैव पूर्वजों की ही तरह पूज्य रहे हैं। आज भी वट अमावस्या, षिवरात्रि पर पीपल पूजा, आंवला वृक्ष पूजा, अषोक वृक्ष पूजा की जाती है। तुलसी जैसी औषधि को हम घर के आंगन में सम्मान देते हैं। जैव विविधता के सभी आयाम हमारी परम्परा में पूज्य रहे हैं।

हम कंकरीट, सीमेंट से भवन निर्माण कर रहे हैं। जिससे धरती की शीतलता समाप्त हो रही है। पॉलीथीन और प्लास्टिक हमारी सभ्यता एवं सुविधाओं के प्रमुख साधन हो गए हैं। वायु प्रदूषण के लिये इन्हें तैयार किया जा चुका है। जंगलों, खेतों की जगह कालोनियों, फैक्ट्रियों ने ले ली है। हवा, वर्षा, प्राकृतिक सौन्दर्य हमसे दूर हो चुका है। क्या हम अभी भी सो रहे हैं? क्या मानव जीवन पर मड़राते खतरे की हमें भनक सुनने में नही आती? क्या हमारी आने वाली पीढ़ी जन्म लेते ही अपनी मृत्यु सुनिषचित करायेगी। यह प्रष्न हमारे सामने खड़े होते जा रहे हैं। उत्तर भी साथ लिये हुए हैं। बड़े भाग्य मानुस तन पावा को चरितार्थ करने के लिए जीवन जीना अतिआवष्यक है औार वह माध्यम हमसे दूर होता जा रहा है।

प्रकृति सम्मान को बचाये रखना ही अपना जीवन बचाना है। जापान की विनाषकारी स्थितियां हमें आन्दोलित कर रही है। पल–पल में भूकम्प के झटके हमें यदायद जगाने की कोषिष कर रहे हैं अर्थात हम सब जागृत हों, समय को जल्द ही पहचानें व सिद्व हस्त कार्य करें। प्रकृति के मूल्यावन स्वरूप को समझें। संस्कार, सभ्यता, पारंपरिक पहचान से साक्षात्कार करें तभी बड़े भाग्य मानुस तन पावा को बचा पायेंगे। सार्थक जीवन हमारी पहचान बनेगी और यही पहचान हमें विष्वगुरू का दर्जा पुनः दिला सकती है, जो हम थे और जिस पर हमारा अधिकार आज भी हो सकता है।

अध्यक्ष
सुजाग्रति समाज सेवी
संस्था मुरैना म0 प्र0